सुनहरी किरणें?!!

ऋति दास धनकर

अनुवाद : रविकांत

बच्चों के लिए, पाठ्यपुस्तकें वेद वाक्य की तरह होती है। उनमें छपी बातें उनके लिए अकाट्य सत्य होती है। पाठ्यपुस्तकों में ज्ञान की वह बुनियाद होती है, जिसके बारे में शिक्षा प्रणाली को लगता है कि इन सारी चीजों को बच्चों को हासिल करना चाहिए। आदर्श तौर पर, इस ज्ञान को बच्चों को विवेकवान तथा निष्पक्ष इंसान बनने में मदद करनी चाहिए।

कक्षा 7 से 10 तक के बच्चों को अंग्रेजी पढ़ाते वक्त मेरा सामना, बहुत सारी ऐसी लिखित सामग्री, बहुत सारे अध्यायों और बहुत सारे इरादों से हुआ, जो शिक्षा के उन उद्देश्यों से बहुत दूर थे, जिन पर देश भरोसा करता है।

किशोरावस्थाा सबसे आसानी से किसी के भी असर में आ जाने वाली उम्र होती है। बच्चे लगातार दुनिया को समझने, जवाबों को खोजने और अवधारणाओं को बनाने की जद्दोजहद में होते हैं। आदर्श तौर पर शिक्षा को, बच्चों की इस यात्र में मदद करनी चाहिए।

हाल ही में, जब मैं बच्चों को राजस्थान पाठ्यपुस्तक मंडल की कक्षा दस की पाठ्यपुस्तक पढ़ा रही थी, तब मुझे अध्यायों पर काम करते वक्त कई चीजों के बारे में थोड़ा ठहर कर सोचना पड़ा, जैसे विश्वासों पर चर्चा करना, अच्छे व बुरे की अवधारणा, लेखक के नजरिये व खुद के नजरिए में कैसे फर्क करें, कैसे इस बात को समझें कि अंतिम सत्य के रूप में सिखाई जा रही हर बात चर्चा और संदेह से परे नहीं है, आदि।

पाठ का नाम है, ''प्रार्थना पर एक चर्चा'', इसे साबरमती आश्रम में मोहनदास कर्मचंद गांधी द्वारा बच्चों को दिए गए प्रवचन में से लिया गया है -

''कुछ लोग ऐसे होते हैं जो अपने विवेक के अहंकार में यह घोषणा करते हैं कि उनका धर्म से कोई लेना-देना नहीं है। लेकिन यह तो कुछ ऐसा है कि जैसे कोई आदमी यह कहे कि वह सांस तो लेता है लेकिन उसके नाक नहीं है।... अज्ञेयवादी (यानी न जानने का दावा करने वाला) या अनीश्वरवादी यानी नास्तिक भी यह मानते हैं कि नैतिक नियम कायदों की जरूरत होती है, और कुछ करने लायक रीति रिवाजों को अच्छा मानते हैं और न करने लायक रीति रिवाजों को बुरा मानते हैं।''[1]

इस छोटे से उद्धरण में हैरत अंगेज तरीके से नाकाम तर्क दिया गया है। धर्म में विश्वास न रखना नकचढ़ेपन की निशानी है, इस बात को मानना तो मेरी नजर में हकीकत में लेखक के अहंकार की झलक देता है। इसकी सबसे बड़ी खामी यह मानने में हैं कि अच्छे व बुरे की अवधारणा या नैतिक सिद्धांत धर्म से स्वतंत्र नहीं होते। यह इन अवधारणाओं के स्वतंत्र अस्तित्व से इंकार करता है, इन्हें उथला बना देता है व दूसरे विचारों पर निर्भर बना देता है, जबकि अपने-आप में ये खूबसूरत विचार हैं।

''...प्रार्थना इंसान की जिंदगी का सबसे केन्द्रीय हिस्सा है, क्योंकि यह धर्म का सबसे महत्वपूर्ण भाग है।''[2]

धर्म की मौजूदगी और अहमियत को स्थापित करने व दूसरी तरह से जीवन जीने को खारिज करने के बाद यहां से पाठ अगले कदम की तरफ बढ़ता है।

''आदमी के दिल में अंधकार व प्रकाश की ताकतों के बीच में जंग जारी रहती है और जिसके पास प्रार्थना के विश्वास का सहारा नहीं है, वह अंधेरे की ताकतों का शिकार होगा... वो आदमी जो बिना प्रार्थना भरे दिल से दुनिया के काम काज करता है, वह खुद भी दुःखी रहेगा और दुनिया को भी एक दुःखदायी जगह बनाएगा।''[3]

हैरत की बात तो यह थी कि ये सारी बातें उस इंसान द्वारा कही जा रही थी, जिसे राष्ट्रपिता कहा जाता है, जो विचारों व चयन की आजादी, एक दूसरे की इज्जत करने में भरोसा करते थे।

''जिनकी जिंदगी का मिशन अपने साथी इंसानों की सेवा करना है, वह चूर-चूर हो जाएगा अगर आप खुद पर किसी तरह का अनुशासन लागू नहीं करते और प्रार्थना एक जरूरी आध्यात्मिक अनुशासन है। यह वह अनुशासन व संयम है जो हमें जानवरों से अलग करता है।''[4]

फिर से, अनुशासन तथा आत्म नियंत्रण की अवधारणाएं सिर्फ धर्म के साए में ही पनप सकती हैं, यह भी एक गलत धारणा है। यह कुछ-कुछ ऐसा है कि बहुत ही सुंदर फूलों के गुलदस्ते को इस डर से किसी बक्से में बंद करके रख दिया जाए कि कहीं वे ताजा हवा व खुले माहौल में मुरझा न जाएं। बच्चों को किसी अवधारणा से परिचित करवाने का मतलब यह होता है कि उन्हें अलग-अलग किस्म के विचारों से परिचित करवाया जाए। दूसरी किस्म की विचार प्रणालियों को खारिज करना और एक खास किस्म के विचार को अंतिम व एक मात्र सचाई की तरह सिखाना, बच्चों को तर्क व विवेक से विमुख करना है।

यह वक्तव्य एक धार्मिक सभा में दिया गया था, जिसमें मौजूद लोग एक खास किस्म की विचारधारा के विचार व धार्मिक प्रवचन सुनना चाहते थे। मैं इस वक्तव्य पर सवाल इसलिए उठा रही हूं क्योंकि यह सब हमारे बच्चों को ''शिक्षित'' करने के इरादे से सिखाया जा रहा है ताकि उन्हें जानकार व विवेकवान व्यक्ति बनाया जा सके।

यह कक्षा दस की एक किताब में से लिया गया एक पाठ है। मैं लिखित सामग्री में इस तरह की चीजों को रेखांकित करती हुई और भी चीजों पर लिखूंगी, जो शिक्षा प्रणाली में से शिक्षा को धकेल कर देहरी से बाहर कर देती है।

शुतुर्मुर्ग तो न बनें

मई 2017 की बात है, रणदीप हुडा ने सोशल मीडिया पर एक पोस्ट शेयर की थी, जिसकी बहुत तारीफ हुई थी और जिसने कइयों के चेहरे पर मुस्कुराहट खिला दी थी। पोस्ट कुछ इस तरह से थीः

''अगर आप मुस्लिम हैं और अचानक आप खुद को ऐसे देश में असुरक्षित महसूस करने लगते हैं, जहां आप हजार बरस से भी ज्यादा वक्त से रह रहे हैं...

अगर आप दलित हैं और आप जिंदगी के हर लम्हे में खुद को अपमानित महसूस करने लगे हैं...

अगर आप हिंदू हैं और अचानक आपको यह लगने लगा है कि गायें हर कहीं मारी काटी जा रही हैं...

अगर आप जैन हैं और आप अचानक यह महसूस करने लगते हैं कि आपकी धर्मनिष्ठा पर समझौता किया जा रहा है...

अगर आप पंजाबी हैं और आप यह सोचते हैं कि सारे युवा नशेड़ी हो गए हैं।

आप सिर्फ एक काम करिए...

सोशल मीडिया से दूर रहें...

खबरें देखना बंद कर दीजिए...

धर्म पर होने वाली बहसों से दूर रहिए...

जरा अपने आस-पास अपने दोस्तों को देखिए, जो अलग-अलग जातियों, समुदायों व धर्मों से हैं...

और आप पाएंगे कि आप दुनिया के सबसे बेहतरीन देशों में से एक देश में रह रहे हैं!!"

हालांकि यह पोस्ट पुरानी थी लेकिन मुझे आज अंग्रेजी की कक्षा में बच्चों से बातचीत करते हुए याद आई।

हम भारत में छुआछूत व हिंदूवाद में उसकी जड़ों वाले पाठ पर चर्चा कर रहे थे। यह हिस्सा मोहनदास कर्मचंद गांधी का लिखा था और राजस्थान पाठ्यपुस्तक मंडल की कक्षा 9 की अंग्रेजी की पाठ्यपुस्तक में शामिल था।

एक गतिविधि के तौर पर, मैं बच्चों के साथ छुआछूत की परंपरा से लोगों पर पड़ने वाले बुरे असरों की सूची पर चर्चा कर रही थी।

हम सभी ने इससे जुड़े अपनी जिंदगी के अनुभव बताए। मैंने बताया कि जैसे ही मेरे सहपाठी के दादा को यह पता चला कि मैं मांसाहार करती हूं तो उन्होंने मुझे घर के भीतर तक नहीं आने दिया व बाहर बरामदे में ही बिठाए रखा। हालांकि यह जाति आधारित भेदभाव का उदाहरण नहीं था लेकिन ''शुद्धता'' का बुनियादी विचार दोनों में एक समान था। मैंने उन्हें बताया कि मेरे परिचित कुछ लोग अभी भी अपने घर आने वाले मुस्लिमों व दलितों के नाश्ते/पानी के बरतन अलग रखते हैं।

बच्चों को इस बात पर हैरत हुई कि अभी भी इस तरह की चीजें शहरों में होती है। उनके हिसाब से गांव अभी भी तमाम सामाजिक बुराइयों के अड्डे थे और शहरों में रहने व आधुनिक कपड़े पहनने वाले छुआछूत जैसे पुराने विचारों की रत्ती भर भी परवाह नहीं करते थे।

मैंने उन्हें कहा कि इस तरह की सामाजिक प्रथाओं को कहीं भी नहीं होना चाहिए लेकिन असलियत यह है कि ये अभी भी मौजूद हैं। ये किसी न किसी रूप में समाज के हरेक हिस्से में मौजूद हैं।

अपने अनुभवों को समेकित करते हुए मैंने कहा कि फिर मैंने यह तय किया कि मैं अपने उन परिचित के यहां नहीं जाऊंगी जो दूसरे इंसानों का अनादर करते हैं क्योंकि मेरे वे परिचित छुआछूत में यकीन रखते थे और यह सिर्फ परिवार के बारे में ही नहीं था। मैं ऐसे व्यक्तियों के साथ कोई संबंध नहीं रख सकती जो बराबरी में यकीन न करते हों और दूसरों का आदर न करते हों।

यह सुनकर हमारे समूह से एक लड़की ने बताया कि उसके घर में भी छुआछूत की जाती है। उसने एक घटना बताई जिसमें उसकी एक भाभी ने ''रैगर'' समुदाय के व्यक्ति को अपनी आटे की चक्की से आटा देने से मना कर दिया।

तभी, इसी बरस दिगन्तर विद्यालय से जुड़े, समूह के एक लड़के ने खड़े हो कर कहा : दीदी, हम ''रैगर'' हैं।

उसकी बात सुनते ही मेरे दिमाग में सैकड़ों विचार एक साथ दौड़ने लगे। मुझे छुआछूत को मानने वाले समाज का हिस्सा होने पर अफसोस हुआ, ऐसी बुराइयों व लोगों पर शर्मिंदगी का अहसास हुआ और आखिर में गुस्सा आया।

इसके बाद हुई चर्चा में करीब-करीब हर बच्चे ने इस बात को माना कि हमारे आस-पास इस तरह की घटनाएं रोज ही होती हैं और फिर इस पर बातचीत की गई कि क्या यह चीज सही है या गलत है और इसे रोकने के लिए हम क्या कर सकते हैं।

उस लड़की ने बताया कि उसने अपनी भाभी को कहा कि छुआछूत करना गलत है लेकिन भाभी ने ऐसी बातों पर बिल्कुल भी ध्यान नहीं दिया और वह अभी भी छुआछूत में पूरा यकीन रखती है।

घंटी बजी और कालांश खत्म हो गया। आज का अनुभव पूरे दिन दिमाग में घूमता रहा व मुझे बैचेन करता रहा।

आखिरकार, जब मैंने इस बात को महसूस किया कि लड़का इस बात को जानता था कि स्कूल का माहौल, वहां के अध्यापक और पूरा तंत्र बराबरी, न्याय व लोकतंत्र में भरोसा करता है, तब मुझे थोड़ी राहत मिली और मैं खुद को सामान्य कर पाई। वह हम पर भरोसा करता है और यह भी जानता है कि हम भी उस पर भरोसा करते हैं। यह जगह उसके लिए एक सुरक्षित जगह है।

वह हमें पिछले दो महीने से जानता है। फिर भी उसे अपनी जाति के बारे में बोल कर बताने में संकोच, शर्म या झिझक नहीं हुई, जबकि अभी भी हमारे यहां स्कूलों में जाति की बात करना वर्जित-सा माना जाता है। वह जानता है कि उसके सहपाठियों के परिवार छुआछूत को मानते हैं और यह गलत है। वह सुरक्षित महसूस करता है और इस बात को जानता है कि इस तरह की प्रथाएं बुरी हैं और इस बात को लेकर उसमें आत्मविश्वास है कि इस तरह की घटनाओं के होने पर उसे शर्मिंदा होने की कोई जरूरत नहीं है।

जिस लड़की ने कहानी सुनाई, वह भी एक नई छात्र थी। उसने यह बता कर हममें भरोसा जाहिर किया कि उसके परिवार वाले छुआछूत को मानते हैं, जो कि नैतिक तौर पर गलत है। उसे स्कूल के माहौल में इस बात का भरोसा था कि उसने यहां पर सच्चाई का बयान किया, इस वजह से उस पर कोई तोहमत नहीं मढ़ी जाएगी या उसे बुरा नहीं समझा जाएगा।

मेरे लिए बच्चों के छोटे-छोटे अनकहे व्यवहारों की ये अभिव्यक्यिां एक बड़ा कदम है।

समाज में जीने के दो तरीके होते हैं। एक, जब भी किसी गलत काम को होते हुए देख कर उसे नजरअंदाज करने के लिए शतुर्मुर्ग की तरह अपना मुंह रेत में गड़ा देना (हुडा की तरह) और दूसरा, गलत चीजों को पहचानना, उन्हें कबूल करना, उन पर सोचना, उनसे सीखना और बेहतर होने की कोशिश करना।

जब भी मैं हिंदू को मुसलमान के साथ भेदभाव करते हुए देखती हूं, जब भी मैं दलित के साथ भेदभाव होते हुए देखती हूं, जब भी मैं मुसलमान द्वारा हिंदुओं को अधर्मी और काफिर कहे जाते सुनती हूं, तब मैं हुडा द्वारा कही गई पोस्ट के बारे में सोचती हूं। पिछले एक-दो बरसों में, मैंने इस पर कई बार सोचा है और हुडा की लिखी पंक्तियों पर भरोसा करने की कोशिश की है, लेकिन जिंदगी की हकीकत बार-बार मुझे यह याद दिलाती रही है कि हम सामाजिक बुराइयों को ज्यादा देर तक फर्श के नीचे नहीं छुपा सकते हैं। एक देश के नाते भारत सारी अच्छी चीजों में भरोसा करता है लेकिन एक नागरिक के नाते हम उन सभी चीजों के मतलबों पर अलग-अलग राय रख सकते हैं।

आलीशान ऑफिस, मॉल, सिनेमाघर, चमचमाते फोन इस बात की अनदेखी करने में हमारी मदद कर सकते हैं कि भारत में जीने वाले बहुसंख्यक लोगों की जिंदगी की हकीकत क्या है लेकिन इससे वह हकीकत ओझल नहीं हो जाती। हम उसे मखमली गलीचे से ढंक देते हैं, जिस तरह से हम हवाई अड्डे के करीब बसी झोंपड़-पट्टियों को छुपाने के लिए बड़े बड़े पर्दे लगा देते हैं, जिससे बाहर से या खास तौर पर विदेश से आने वाला कोई व्यक्ति उस शहर की असलियत को देख न ले।

सामाजिक बदलाव पलक झपकते ही नहीं हुआ करते। जमी-जमाई मानसिकता भी चुटकी बजाते ही नहीं बदलती है। इनमें बरसों या शायद पीढ़ियां लगती हैं। लेकिन एक बार सवाल या तर्क का बीज बो दिया जाए तो विवेक का पौधा उग आएगा। यह कुछ देर के लिए नींद में गाफिल रह सकता है लेकिन कभी न कभी उगेगा। ◆

लेखक परिचय : मनोविज्ञान में पी.एच.डी हैं और पिछले लगभग चार वर्षों से दिगन्तर में कार्यरत।

संपर्क : riti@digantar.org

संदर्भ

1. पृ. 102-103, Chapter 8, A Discourse on Prayer, Golden Rays English Book-1, Class X, Rajasthan State Text Boo Board
2. वही
3. वही
4. वही